Bundelkhand Journal of Academic Research

# विकेंद्रीकरण और जनसहभागिता के संदर्भ में सतत एवं समावेशी विकास का समालोचनात्मक अध्ययन

**डॉ. ब्रजेन्द्र सिंह[1], डॉ. लाल बहादुर राम[2]**

1. **सहायक आचार्य,** राजनीति विज्ञान विभाग, समता पी.जी. कॉलेज, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश।
2. **सह–आचार्य,** रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, समता पी.जी. कॉलेज सादात, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश।

(**Corresponding Author:** lalbahadurbanda10@gmail.com)

**https://doi.org/10.5281/zenodo.23005699**

**सारांश**

आधुनिक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में विकेंद्रीकरण और जनसहभागिता को सुशासन, सतत एवं समावेशी विकास के दो प्रमुख स्तंभों के रूप में स्वीकार किया जाता है। विकास की पारंपरिक केंद्रीकृत व्यवस्था में स्थानीय आवश्यकताओं, क्षेत्रीय विविधताओं तथा नागरिकों की आकांक्षाओं की पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं हो पाती थी। परिणामस्वरूप विकास की योजनाएँ अनेक बार स्थानीय आवश्यकताओं से असंगत सिद्ध हुईं। इस समस्या के समाधान हेतु विकेंद्रीकरण की अवधारणा विकसित हुई, जिसके अंतर्गत निर्णय लेने, संसाधनों के प्रबंधन और प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का हस्तांतरण स्थानीय संस्थाओं को किया जाने लगा। इसके साथ ही जनसहभागिता यह सुनिश्चित करती है कि विकास प्रक्रिया में नागरिक केवल लाभार्थी न रहकर नीति–निर्माण, योजना निर्माण, क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन प्रक्रिया में भी सक्रिय सहभागी बनें। भारत में 73वें और 74वें संविधान संशोधनों ने स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक आधार प्रदान किया तथा लोकतंत्र को जमीनी स्तर तक विस्तारित किया। इसके बावजूद वित्तीय निर्भरता, प्रशासनिक सीमाएँ, राजनीतिक हस्तक्षेप, सामाजिक असमानताएँ तथा क्षमता–विकास की कमी जैसी समस्याएँ आज भी विकेंद्रीकरण की प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं। इसी प्रकार जनसहभागिता अनेक स्थानों पर केवल औपचारिक प्रक्रिया बनकर रह जाती है। इसलिए आवश्यक है कि विकेंद्रीकरण को केवल प्रशासनिक सुधार न मानकर लोकतांत्रिक सशक्तीकरण तथा समावेशी विकास की व्यापक प्रक्रिया के रूप में भी देखा जाए। यह शोध पत्र विकेंद्रीकरण और जनसहभागिता की अवधारणाओं, उनके पारस्परिक संबंध को भारतीय संदर्भ में प्रासंगिकता तथा सतत एवं समावेशी विकास में उनकी भूमिका का समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही वर्तमान चुनौतियों एवं सुधार की संभावनाओं पर भी विचार प्रस्तुत करता है।

| आलेख सूचना | | | |
|---|---|---|---|
| | **प्राप्त:** 24 अगस्त, 2026 | **स्वीकृत:** 05 सितंबर, 2026 | **प्रकाशित:** 30 सितंबर, 2026 |
| | **सारणी:** 00 | **चित्र एवं ग्राफ:** 00 | **स्रोत एवं संदर्भ:** 09 |
| | **मुख्य शब्द:** विकेंद्रीकरण, जनसहभागिता, सतत, समावेशी, सुशासन, स्थानीय स्वशासन। | | |

**1. परिचय एवं पृष्ठभूमि :** 21वीं शताब्दी में विकास की अवधारणा ने पारंपरिक आर्थिक वृद्धि के संकीर्ण दृष्टिकोण से आगे बढ़कर बहुआयामी स्वरूप ग्रहण किया है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में विकास का अर्थ केवल राष्ट्रीय आय, सकल घरेलू उत्पाद (GDP) अथवा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, मानवाधिकार, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व, लैंगिक समानता, पर्यावरणीय संरक्षण तथा नागरिकों की गरिमापूर्ण जीवन से भी अभिन्न रूप से जुड़ गया है। विकास की इस नवीन अवधारणा में यह स्वीकार किया गया कि यदि आर्थिक प्रगति के लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक समान रूप से नहीं पहुँचते हैं, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण नहीं होता है तथा नागरिक नीतिनिर्माण की प्रक्रिया से बाहर रहते हैं, तो ऐसी विकास प्रक्रिया न तो समावेशी कही जा सकती है और न ही सतत। यही कारण है कि समकालीन विकास विमर्श में सतत विकास तथा समावेशी विकास को विकास नीति के दो प्रमुख रूपों में स्वीकार किया गया है। वर्ष 1987 में ब्रटलैंड आयोग ने अपनी रिपोर्ट 'आवर कॉमन फ्यूचर' में सतत विकास को इस प्रकार परिभाषित किया कि ''वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार की जाए कि भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता से कोई समझौता न हो।'' इस परिभाषा ने विकास और पर्यावरण के मध्य संतुलन की आवश्यकता को वैश्विक स्तर पर स्थापित किया। इसके पश्चात वर्ष 2015 में

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 2030 'एजेंडा फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट' तथा 17 बिंदु के सतत विकास लक्ष्य (SDGs) को अपनाया गया, जिनमें गरीबी उन्मूलन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, लैंगिक समानता, स्वच्छ जल एवं स्वच्छता, जलवायु परिवर्तन का सामना, असमानताओं में कमी, सतत नगरों का निर्माण तथा प्रभावी एवं उत्तरदायी संस्थाओं के निर्माण जैसे व्यापक लक्ष्य सम्मिलित किए गए। इन लक्ष्यों की मूल भावना यह है कि विकास की प्रक्रिया समावेशी, सहभागी तथा न्यायपूर्ण हो तथा समाज का कोई भी वर्ग विकास की मुख्यधारा से वंचित न रह जाए। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ. अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक 'डेवलपमेंटस फ्रीडम'(1999) में वर्णन किया है कि वास्तविक विकास का अर्थ केवल आय में वृद्धि नहीं, बल्कि मनुष्य की स्वतंत्रताओं एवं क्षमताओं का विस्तार है। अमर्त्य सेन के अनुसार, 'विकास तभी सार्थक माना जाएगा जब प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, राजनीतिक सहभागिता तथा गरिमामय जीवन के समान अवसर उपलब्ध हों।' यह विचार विकास को केवल आर्थिक प्रक्रिया न मानकर मानव–केंद्रित प्रक्रिया के रूप में स्थापित करता है। इसी प्रकार महबूब उल हक ने भी यह सिद्ध किया है कि मानव विकास दृष्टिकोण का अंतिम उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण कल्याण है, न कि केवल उत्पादन अथवा आय में वृद्धि।

समावेशी और सतत विकास की प्राप्ति के लिए लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में नागरिकों की सक्रिय सहभागिता अत्यंत आवश्यक मानी जाती है। लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ केवल प्रतिनिधियों का निर्वाचन नहीं, वरन नागरिकों की निरंतर भागीदारी, उत्तरदायित्वपूर्ण शासन तथा निर्णय निर्माण की विकेंद्रित प्रक्रिया है। इस संदर्भ में एलेक्सिस डी टॉकविल के विचार उल्लेखनीय है कि 'स्थानीय संस्थाएँ स्वतंत्रता की वही भूमिका निभाती हैं जो प्राथमिक विद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में निभाते हैं, वे नागरिकों को लोकतंत्र का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करती हैं।' टॉकविल का यह विचार स्पष्ट करता है कि लोकतंत्र की सफलता केवल राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उसकी वास्तविक शक्ति स्थानीय स्वशासन और नागरिक सहभागिता में निहित होती है। इसी प्रकार महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज की अवधारणा के माध्यम से ऐसे लोकतंत्र की परिकल्पना प्रस्तुत की थी, जिसमें प्रत्येक गाँव प्रशासनिक, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो तथा स्थानीय समुदाय स्वयं अपने विकास का निर्धारण करे। गांधी जी का मानना था कि भारत की वास्तविक शक्ति उसके गाँवों में निहित है और जब तक स्थानीय समुदाय निर्णय लेने में सक्षम नहीं होंगे, तब तक लोकतंत्र की आत्मा सशक्त नहीं हो सकती। गांधी जी का यह दृष्टिकोण आज के विकेंद्रीकरण तथा सहभागी विकास की अवधारणाओं का वैचारिक आधार माना जाता है।

आधुनिक प्रशासनिक सिद्धांतों में डेनिस ए. रोंडिनेली ने विकेंद्रीकरण को प्रशासनिक दक्षता, उत्तरदायित्व तथा विकास की प्रभावशीलता बढ़ाने का महत्वपूर्ण माध्यम बताया है। उनके अनुसार स्थानीय स्तर पर अधिकारों का हस्तांतरण न केवल निर्णय–निर्माण को अधिक उत्तरदायी बनाता है, बल्कि योजनाओं को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने में भी सहायता करता है। इसी प्रकार जेम्स मैनर का मत है कि 'प्रभावी विकेंद्रीकरण शासन में पारदर्शिता, नागरिक उत्तरदायित्व तथा लोकतांत्रिक वैधता को सुदृढ़ करता है।' वहीं एलिनोर ओस्ट्रॉम ने सामुदायिक संसाधनों के प्रबंधन पर अपने अध्ययन में यह सिद्ध किया है कि स्थानीय समुदाय यदि निर्णय निर्माण में सक्रिय रूप से सम्मिलित हों, तो सार्वजनिक संसाधनों का संरक्षण एवं प्रबंधन अधिक प्रभावी और टिकाऊ बन सकता है। उनके विचार सहभागी शासन की अवधारणा को सैद्धांतिक आधार प्रदान करते हैं। वैश्विक स्तर पर भी अनेक अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने विकेंद्रीकरण और जनसहभागिता को प्रभावी विकास का आधार माना है। विश्व बैंक के अनुसार सहभागी शासनविकास परियोजनाओं की गुणवत्ता, पारदर्शिता तथा उत्तरदायित्व में वृद्धि करता है, जबकि संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) का मत है कि स्थानीय संस्थाओं को सशक्त किए बिना सतत विकास लक्ष्यों की प्रभावी प्राप्ति संभव नहीं है। इस प्रकार वैश्विक अनुभव यह प्रमाणित करते हैं कि लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण केवल शासन सुधार का उपकरण नहीं, बल्कि समावेशी विकास की अनिवार्य शर्त है।

भारत के संदर्भ में विकेंद्रीकरण का महत्व और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि भारत एक विशाल, बहुभाषी, बहुसांस्कृतिक तथा सामाजिक–आर्थिक विविधताओं से परिपूर्ण राष्ट्र है। विभिन्न राज्यों, क्षेत्रों तथा समुदायों की आवश्यकताएँ परस्पर भिन्न हैं, अतः एकरूप विकास नीति सभी क्षेत्रों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर सकती। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान में 73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों (1992) के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं तथा नगरीय स्थानीय निकायों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इन संशोधनों का उद्देश्य शासन को नागरिकों के निकट लाना, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप योजनाओं का निर्माण करना तथा विकास प्रक्रिया में जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करना था। आज भारत में लगभग 2.6 लाख से अधिक पंचायती राज संस्थाएँ कार्यरत हैं, जिनमें 31 लाख से अधिक निर्वाचित प्रतिनिधि जनप्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहे हैं। इनमें लगभग 46 प्रतिशत महिलाएँ हैं, जो स्थानीय लोकतंत्र में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी का महत्वपूर्ण संकेतक है। यह विश्व में स्थानीय स्तर पर महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व के सबसे बड़े उदाहरणों में से एक माना जाता है।

यद्यपि भारत में विकेंद्रीकरण की संवैधानिक व्यवस्था स्थापित हो चुकी है, तथापि व्यवहारिक स्तर पर अनेक चुनौतियाँ आज भी विद्यमान हैं। स्थानीय निकायों की सीमित वित्तीय स्वायत्तता, प्रशासनिक क्षमता का अभाव, राज्य सरकारों पर अत्यधिक निर्भरता, नौकरशाही का प्रभाव, राजनीतिक हस्तक्षेप, सामाजिक असमानताएँ तथा नागरिक जागरूकता की कमी स्थानीय स्वशासन की प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं। अनेक क्षेत्रों में ग्राम सभाएँ नियमित

एवं प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर पातीं, सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया औपचारिक बनकर रह जाती है तथा निर्णय निर्माण कुछ प्रभावशाली समूहों तक सीमित रह जाता है। फलतः विकास की प्रक्रिया में वंचित समुदायों की वास्तविक भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो पाती, जिससे समावेशी एवं सतत विकास के उद्देश्य आंशिक रूप से ही साकार हो पाते हैं।

उपर्युक्त संदर्भों के आलोक में यह शोध लेख विकेंद्रीकरण, जनसहभागिता तथा सतत एवं समावेशी विकास के पारस्परिक संबंधों का समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही यह अध्ययन इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास करता है कि स्थानीय स्वशासन और नागरिक सहभागिता किस सीमा तक लोकतांत्रिक विकास को सुदृढ़ करते हैं, वर्तमान व्यवस्था की प्रमुख चुनौतियाँ क्या हैं? तथा भविष्य में कौन से संस्थागत एवं नीतिगत सुधार इन अवधारणाओं को अधिक प्रभावी बनाकर सतत एवं समावेशी विकास के लक्ष्य की प्राप्ति सुनिश्चित कर सकते हैं।

**2. विकेंद्रीकरण, जनसहभागिता तथा सतत एवं समावेशी विकास की अवधारणा :** वर्तमान लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में विकेंद्रीकरण, जनसहभागिता तथा सतत एवं समावेशी विकास परस्पर संबद्ध एवं एक–दूसरे की पूरक अवधारणा है। ये तीनों अवधारणाएँ इस विचार पर आधारित हैं कि विकास तभी प्रभावी, न्यायसंगत और दीर्घकालिक हो सकता है, जब शासन की शक्ति केवल शीर्ष स्तर पर केंद्रित न होकर स्थानीय समुदायों तक पहुँचे तथा नागरिक विकास प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में सक्रिय रूप से सहभागी बनें। वर्तमान समय में लोक प्रशासन और विकास प्रशासन में इन अवधारणाओं को सुशासन, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व तथा मानव–केंद्रित विकास के आधारभूत स्तंभों के रूप में स्वीकार किया गया है। विकेंद्रीकरण का सामान्य अर्थ शासन संबंधी शक्तियों, उत्तरदायित्वों, संसाधनों तथा निर्णय लेने के अधिकारों का केंद्रीय अथवा राज्य स्तर से स्थानीय स्तर की संस्थाओं को हस्तांतरित करना है। यह केवल प्रशासनिक पुनर्गठन नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक शासन की ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से नागरिकों को शासन के निकट लाकर उन्हें विकास का सक्रिय भागीदार बनाया जाता है।

डेनिस के अनुसार, ''विकेंद्रीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत योजना निर्माण, निर्णय–निर्माण तथा प्रशासनिक अधिकारों का हस्तांतरण केंद्रीय सरकार से क्षेत्रीय एवं स्थानीय संस्थाओं को किया जाता है।'' रोंडिने ली का मत है कि प्रभावी विकेंद्रीकरण से प्रशासन अधिक उत्तरदायी, लचीला तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनता है। इसी प्रकार जेम्स मैनर का मानना है कि वास्तविक विकेंद्रीकरण केवल अधिकारों के हस्तांतरण तक सीमित नहीं होता, बल्कि स्थानीय संस्थाओं को पर्याप्त वित्तीय संसाधन, प्रशासनिक स्वतंत्रता तथा निर्णय लेने की स्वायत्तता प्रदान करना भी आवश्यक है। यदि अधिकारों के साथ संसाधनों का हस्तांतरण न हो तो विकेंद्रीकरण केवल औपचारिक प्रक्रिया बनकर रह जाता है।

लोक प्रशासन के विद्वान विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया को तीन प्रमुख आयामों में विभाजित करते हैं कि प्रथमतः राजनीतिक विकेंद्रीकरण नागरिकों को स्थानीय शासन में प्रत्यक्ष भागीदारी का अवसर प्रदान करता है। इसके माध्यम से स्थानीय निकायों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन, ग्राम सभा, वार्ड समिति तथा नगर परिषद जैसी संस्थाओं का गठन किया जाता है, जिससे लोकतंत्र केवल संसद अथवा विधान सभाओं तक सीमित न रहकर स्थानीय स्तर तक विस्तारित हो जाता है। द्वितीय, प्रशासनिक विकेंद्रीकरण जो विकास योजनाओं के क्रियान्वयन को अधिक प्रभावी एवं उत्तरदायी बनाता है। जब स्थानीय प्रशासन को पर्याप्त अधिकार प्राप्त होते हैं, तब वह क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार योजनाओं का निर्माण एवं कार्यान्वयन कर सकता है। इससे निर्णय लेने की प्रक्रिया में विलंब कम होता है तथा सार्वजनिक सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार आता है तथा तृतीय, वित्तीय विकेंद्रीकरण जिसके अनुसार वित्तीय स्वायत्तता के बिना स्थानीय स्वशासन प्रभावी नहीं हो सकता। स्थानीय निकायों को कर लगाने, राजस्व संग्रह करने तथा विकास योजनाओं के लिए वित्तीय संसाधनों का उपयोग करने का अधिकार प्राप्त होना आवश्यक है। भारतीय संदर्भ में केंद्रीय वित्त आयोग तथा राज्य वित्त आयोग स्थानीय निकायों की वित्तीय क्षमता को सुदृढ़ करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फिर भी अनेक अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश पंचायतें आज भी अपने कुल व्यय का बड़ा भाग राज्य सरकारों के अनुदानों पर निर्भर करती हैं। यह स्थिति स्थानीय स्वायत्तता को सीमित करती है तथा विकास योजनाओं के स्वतंत्र संचालन में बाधा उत्पन्न करती है।

जनसहभागिता का अर्थ केवल नागरिकों की उपस्थिति से नहीं, बल्कि विकास प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में समस्या की पहचान, योजना निर्माण, संसाधन प्रबंधन, क्रियान्वयन, निगरानी तथा मूल्यांकन में उनकी सक्रिय, सार्थक एवं सूचित भागीदारी से है।शैरी आरनस्टीन ने अपने प्रसिद्ध 'लैडर ऑफ सिटीजन पार्टिसिपेशन मॉडल' में स्पष्ट किया कि वास्तविक सहभागिता तभी संभव है जब नागरिक केवल सूचना प्राप्त करने वाले न हों, बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में साझेदार बनें। उनके अनुसार सहभागिता का सर्वोच्च स्तर नागरिकों को वास्तविक निर्णयकारी शक्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार रॉबर्ट पुटनम ने 'सोशल कैपिटल' की अवधारणा में कहा कि जहाँ नागरिकों के मध्य विश्वास, सहयोग तथा सामुदायिक सहभागिता अधिक होती है, वहाँ लोकतांत्रिक संस्थाएँ अधिक प्रभावी ढंग से कार्य करती हैं। सामाजिक पूँजी जितनी मजबूत होगी, विकास योजनाओं की सफलता की संभावना उतनी ही अधिक होगी।

आधुनिक विकास प्रशासन में सहभागी विकास को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस दृष्टिकोण के अनुसार विकास योजनाएँ ऊपर से थोपने के बजाय स्थानीय समुदायों की आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं के अनुरूप तैयार की जानी चाहिए। एलिनोर ओस्ट्रॉम ने सामुदायिक संसाधनों के प्रबंधन पर अपने शोध में सिद्ध किया कि स्थानीय समुदाय यदि नियम निर्माण, संसाधन संरक्षण तथा निगरानी की प्रक्रिया में सम्मिलित हों तो सार्वजनिक संसाधनों का उपयोग अधिक प्रभावी एवं टिकाऊ होता है। उनका यह सिद्धांत आज जल संरक्षण, वन प्रबंधन, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा स्थानीय शासन में व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है। वहीं सतत विकास का उद्देश्य आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय तथा पर्यावरणीय संरक्षण के मध्य संतुलन स्थापित करना है। इसी प्रकार समावेशी विकास यह सुनिश्चित करता है कि विकास के लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग विशेषकर महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों, दिव्यांगजनों तथा आर्थिक रूप से कमजोर समुदायों तक समान रूप से पहुँचें।

**3. भारतीय संदर्भ में विकेंद्रीकरण एवं जनसहभागिता:** भारत में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को संवैधानिक आधार 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा प्राप्त हुआ। इन संशोधनों के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं तथा नगरीय स्थानीय निकायों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया तथा महिलाओं, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। वर्तमान में भारत में लगभग 2.6 लाख ग्राम पंचायतें, 31 लाख से अधिक निर्वाचित प्रतिनिधि तथा लगभग 46 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व स्थानीय लोकतंत्र की व्यापकता को दर्शाते हैं। यह विश्व में स्थानीय स्तर पर महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के सबसे बड़े उदाहरणों में से एक है। अनेक राज्यों ने महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत तक आरक्षण प्रदान कर स्थानीय शासन में लैंगिक समानता को और सुदृढ़ किया है। ग्राम सभा, सामाजिक अंकेक्षण (सोशल ऑडिट), स्वयं सहायता समूह, जल एवं वन प्रबंधन समितियाँ तथा सहभागी ग्राम विकास योजनाएँ जनसहभागिता के प्रभावी माध्यम बनकर उभरी हैं। विशेष रूप से महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) में सामाजिक अंकेक्षण की व्यवस्था ने स्थानीय स्तर पर पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

**4. विकेंद्रीकरण एवं जनसहभागिता के समक्ष चुनौतियाँ :** भारत में 73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से विकेंद्रीकरण को संवैधानिक आधार प्रदान किया गया है, किंतु इसके प्रभावी क्रियान्वयन के समक्ष अनेक संरचनात्मक, प्रशासनिक एवं सामाजिक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। सबसे बड़ी चुनौती वित्तीय स्वायत्तता का अभाव है। अधिकांश पंचायती राज संस्थाएँ एवं नगरीय स्थानीय निकाय अपने राजस्व स्रोतों के सीमित होने के कारण राज्य सरकारों के अनुदानों पर निर्भर रहते हैं। इससे स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप स्वतंत्र निर्णय लेने की उनकी क्षमता प्रभावित होती है। जेम्स मैनर के अनुसार, वित्तीय संसाधनों के बिना विकेंद्रीकरण केवल औपचारिक व्यवस्था बनकर रह जाता है। दूसरी प्रमुख चुनौती, प्रशासनिक क्षमता एवं संस्थागत दक्षता की कमी है। अनेक स्थानीय निकायों में प्रशिक्षित मानव संसाधन, तकनीकी विशेषज्ञता तथा आधुनिक प्रशासनिक कौशल का अभाव योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न करता है। साथ ही, नौकरशाही का अत्यधिक नियंत्रण स्थानीय स्वायत्तता को सीमित करता है। जनसहभागिता की सीमित प्रभावशीलता भी एक गंभीर समस्या है। अनेक क्षेत्रों में ग्राम सभाएँ नियमित एवं सक्रिय रूप से कार्य नहीं कर पातीं तथा निर्णय निर्माण की प्रक्रिया पर स्थानीय प्रभावशाली वर्गों का प्रभुत्व बना रहता है। जातिगत असमानता, लैंगिक भेदभाव, आर्थिक विषमता तथा सीमित नागरिक जागरूकता के कारण महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य वंचित वर्गों की भागीदारी कई बार केवल औपचारिक रह जाती है। शैरी आरनस्टीन के अनुसार, यदि नागरिकों को वास्तविक निर्णयकारी अधिकार प्राप्त न हों, तो सहभागिता प्रतीकात्मक बन जाती है। इसके अतिरिक्त, राजनीतिक हस्तक्षेप, भ्रष्टाचार, पारदर्शिता का अभाव, कमजोर सामाजिक अंकेक्षण, डिजिटल असमानता तथा पर्यावरणीय दृष्टिकोण की उपेक्षा भी विकेंद्रीकरण की प्रभावशीलता को प्रभावित करते हैं। इन परिस्थितियों में विकास योजनाएँ स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप संचालित नहीं हो पातीं और सतत एवं समावेशी विकास का लक्ष्य आंशिक रूप से ही प्राप्त होता है। अतः विकेंद्रीकरण को प्रभावी बनाने के लिए वित्तीय सशक्तीकरण, संस्थागत क्षमता निर्माण, सामाजिक समावेशन तथा उत्तरदायी जनसहभागिता को समान रूप से सुदृढ़ करना आवश्यक है।

अतः यह स्पष्ट है कि विकेंद्रीकरण, जनसहभागिता तथा सतत एवं समावेशी विकास एक–दूसरे के पूरक तत्व हैं। प्रभावी स्थानीय स्वशासन, सक्रिय नागरिक सहभागिता, वित्तीय एवं प्रशासनिक स्वायत्तता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के समन्वय से ही लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था अधिक न्यायपूर्ण, पारदर्शी और विकासोन्मुख बन सकती है। इसलिए सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इन तीनों अवधारणाओं का समेकित एवं व्यवहारिक क्रियान्वयन अनिवार्य है।

**निष्कर्ष एवं सुझाव :** प्रस्तुत विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि विकेंद्रीकरण एवं जनसहभागिता समकालीन विकास प्रशासन के ऐसे प्रमुख आधार हैं, जो सतत एवं समावेशी विकास को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करते हैं। अध्ययन से

स्पष्ट होता है कि स्थानीय स्वशासन की प्रभावशीलता केवल संवैधानिक प्रावधानों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि वित्तीय स्वायत्तता, संस्थागत क्षमता, पारदर्शी प्रशासन तथा नागरिकों की सार्थक सहभागिता पर भी आधारित होती है। विकास प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों की सक्रिय भूमिका योजनाओं को अधिक उत्तरदायी, न्यायसंगत एवं स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनाती है, जिससे सामाजिक समावेशन और संसाधनों के संतुलित उपयोग को प्रोत्साहन मिलता है। वर्तमान समय में भारत में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, परंतु प्रशासनिक, वित्तीय एवं सामाजिक चुनौतियाँ इसकी प्रभावशीलता को सीमित करती हैं। अतः आवश्यक है कि स्थानीय संस्थाओं को पर्याप्त संसाधन, तकनीकी दक्षता एवं निर्णयात्मक स्वायत्तता प्रदान करने के साथ–साथ नागरिकों की जागरूक एवं उत्तरदायी भागीदारी को भी सुदृढ़ किया जाए। निष्कर्षतः सहभागी एवं विकेंद्रित शासन व्यवस्था ही ऐसी विकास प्रक्रिया का आधार बन सकती है, जो सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय संतुलन तथा लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व के माध्यम से दीर्घकालिक और समावेशी विकास के लक्ष्यों की प्रभावी प्राप्ति सुनिश्चित कर सके।

## स्रोत एवं संदर्भः


1. दत्त, आर. एवं सुंदरम, के. पी. एम. (2023). भारतीय अर्थव्यवस्था। 74वाँ संस्करण, एस. चाँद एंड कंपनी प्रा. लि.।
2. मिश्र, एस. एन., एवं सिंह, एस. एस. (2020). स्थानीय स्वशासन एवं पंचायती राज, ओरिएंट ब्लैक स्वान, 2020।
3. पंचायती राज मंत्रालय (2024). वार्षिक प्रतिवेदन 2023–24। पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार।
4. अवस्थी एवं अवस्थी (2014). लोकप्रशासन। 26वां संस्करण, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2014।
5. लक्ष्मीकांत, एम. (2012). लोक प्रशासन, मैक्ग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, 2012।
6. जैन, पुखराज एवं फाडिया, बी.एल. (2021). भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2021।
7. ओस्ट्रॉम, एलिनोर. (1990). गवर्निंग द कॉमन्सः द इवोल्यूशन ऑफ इंस्टीट्यूशंस फॉर कलेक्टिवएक्शन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990।
8. रोंडिनेली, डेनिस ए., नेलिस, जॉन आर., एवं चीमा, जी. शब्बीर. (1983). डिसेंट्रलाइजेशन इन डेवलपिंग कंट्रीजः अ रिव्यू ऑफ रिसेंट एक्सपिरियन्स, विश्व बैंक, 1983।
9. सेन, अमर्त्य (1999). डेवलपमेंटएस फ्रीडम, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,1999।


=====


| | |
|---|---|
| **आलेख उद्धरित करें :** | सिंह, डॉ. ब्रजेन्द्र एवं राम, डॉ. लाल बहादुर (2026)। विकेंद्रीकरण और जनसहभागिता के संदर्भ में सतत एवं समावेशी विकास का समालोचनात्मक अध्ययन। बुंदेलखंड जर्नल ऑफ अकादमिक रिसर्च (बीजेएआर), वॉल्यूम–2, अंक–3, जुलाई–सितंबर, 2026, पृष्ठ 35–39। https://doi.org/10.5281/zenodo.23005699 |